ISSN 2277 - 7865
Price : 50.00

तित्थयर

वर्ष : ३७ अंक : ०४ जुलाई २०१३

॥ जैन भवन ॥

शुभ कामनाओं सहित —

जिसने दु:ख को समाप्त कर दिया है उसे मोह नहीं,
जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है।
जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास
कुछ भी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।

Nivesh Invest Pte. Ltd.
Mumbai-Singapore-Honkong-Shanghai

ISSN 2277 - 7865

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३७ अंक - ४ जुलाई २०१३

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@rediffmail.com

विज्ञप्पन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00
Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from
P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655
and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street
Kolkata - 700 006 Phone : 2241-1006

संपादन
डॉ. लता बोथरा
पी-एच.डी., डी.लिट्

॥ जैन भवन ॥

Editorial Board :

1. Dr. Satyaranjan Banerjee
2. Dr. Sagarmal Jain
3. Dr. Lata Bothra
4. Dr. Jitendra B. Shah
5. Prof. Anupam Jash
6. Dr. Abhijit Bhattacharyya
7. Dr. Peter Flugel
8. Dr. Rajiv Dugar
9. Smt. Jasmine Dudhoria
10 Smt. Pushpa Boyd

अनुक्रमणिका

क्र. सं. लेख	लेखक	पृ. सं.
१. जैन दार्शनिक साहित्य	प्रो. सागरमल जैन	१७७
२. कुवलय माला	श्री केवल मुनि	१९१
३. संकलन	मुनिश्री प्रकर्ष सागरजी	२०३

ISSN 2277 - 7865

कवरपृष्ठ : मंगोलिया से प्राप्त देवी सरस्वती का चित्र

Composed by:

Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

जैन दार्शनिक साहित्य

प्रो. सागरमल जैन

जहाँ तक जैन धर्म के दार्शनिक साहित्य का प्रश्न है, उसे मुख्य रूप से तीन भागों में बाटा गया है– (1) प्राकृत भाषा का जैन दार्शनिक साहित्य (2) संस्कृत भाषा का जैन दार्शनिक साहित्य और (3) आधुनिक युग का जैन दार्शनिक साहित्य।

प्राकृत भाषा का जैन दार्शनिक साहित्य :

जैन धर्म का आधार आगम ग्रन्थ है। आगम-साहित्य के सभी ग्रन्थ तो दार्शनिक साहित्य से सबंधित नहीं माने जा सकते हैं, किन्तु आगमों में कुछ ग्रन्थ अवश्य ही ऐसे है, जिन्हें हम दार्शनिक साहित्य के अन्तर्गत ले सकते हैं। दार्शनिक साहित्य के तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा और आचारमीमांसा– ये तीन प्रमुख अंग होते हैं। तत्त्वमीमांसा के अन्तर्गत सृष्टि विज्ञान एवं खगोल-भूगोल संबंधी कुछ चर्चा भी आ जाती है। इस दृष्टि से यदि हम प्राकृत जैन साहित्य और उसमें भी विशेष रूप से आगमिक साहित्य की चर्चा करे तो उसमें निम्न आगमिक ग्रन्थों का समावेश हो जाता है। हम उन्हें तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा एवं आचारमीमांसा की दृष्टि से ही वर्गीकृत करने का प्रयत्न करेंगे। जहाँ तक तत्त्वमीमांसीय आगम साहित्य का प्रश्न है, उसके अन्तर्गत प्रथम ग्रन्थ सूत्रकृतांग ही आता है। यद्यपि सूत्रकृतांग में जैन आचार संबंधी कुछ कुछ दार्शनिक विषयों की चर्चा है, किन्तु फिर भी प्राथमिक दृष्टि से उसका प्रतिपाद्य विषय उस युग की विभिन्न दार्शनिक मान्यताओं की समीक्षा रहा है। इस आधार पर हम उसे प्राकृत एवं जैन आगम साहित्य का एक महत्वपूर्ण दार्शनिक ग्रन्थ कह सकते हैं। जहाँ तक प्रथम अंग आगम आचारांग का प्रश्न है वह मुख्यतः दार्शनिक मान्यताओं

के साथ-साथ जैन साधना के मूलभूत दार्शनिक सूत्रों को प्रस्तुत करता है। इसमें आत्मा के अस्तित्व एवं षट्जीवनिकाय के साथ किन-किन तत्त्वों का अस्तित्त्व मानना चाहिए - इसकी चर्चा है। किन्तु इसके साथ ही उसमें जैन आचार और विशेष रूप से मुनि आचार की विस्तृत विवेचना है। आचारांग और सूत्रकृतांग के अतिरिक्त अंगआगमों में तीसरे और चौथे अंगआगम स्थानांग और समवायांग का क्रम आता है। ये दोनों ग्रन्थ संख्या के आधार पर निर्मित जैन विद्या के कोषग्रन्थ कहे जा सकते है। इनमें विविध विषयों का संकलन है। यह सत्य है कि इनमें कुछ दार्शनिक विषय भी समाहित किए गए हैं। किन्तु ये दोनों ग्रन्थ दार्शनिक विषयों के अतिरिक्त जैन सृष्टिविद्या, नक्षत्रविद्या एवं खगोल-भूगोल आदि से भी सम्बन्धित है। पांचवें अंग आगम के रूप में भगवतीसूत्र का क्रम आता है। निश्चय ही यह ग्रन्थ जैन दार्शनिक मान्यताओं और विशेष रूप से तत्त्व मीमांसीय अवधारणाओं का आधारभूत ग्रन्थ है। अंगआगमों में भगवतीसूत्र के पश्चात् ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृत्दशा, प्रश्नव्याकरणसूत्र और विपाकदशा का क्रम आता है। सामान्यतया देखने पर ये सभी ग्रन्थ जैन साधकों के जीवनवृत और उनकी साधनाओं को ही प्रस्तुत करते है। फिर भी उपासकदशा में श्रावक के आचार नियमों का विस्तृत विवेचन उपलब्ध हो जाता है। इसी प्रकार प्रश्नव्याकरणसूत्र की वर्तमान विषय-वस्तु प्रांच आश्रवद्वारों और संवरद्वारों की चर्चा करता है, जो जैन आचारशास्त्र की मूलभूत सैद्धान्तिक अवधारणा से सम्बन्धित है। अन्य दृष्टि से आश्रव और संवर जैन तत्त्व योजना के प्रमुख अंग है। इसी दृष्टि से इस अंग का संबंध भी जैन तत्त्व मीमांसा से जोड़ा जा सकता है। विपाकसूत्र के अन्तर्गत दो विभाग है - सुख विपाक और दुःख विपाक। यह ग्रन्थ यद्यपि कथारूप ही है, फिर भी इसमें व्यक्ति के कर्म का परिणामों का चिन्तन होने से इसे एक दृष्टि से जैन दार्शनिक साहित्य से संबंधित माना जा सकता है।

जहाँ तक उपांग साहित्य का प्रश्न है, उसके अन्तर्गत निम्न 12 ग्रन्थ आते है - इनमें औपपातिकसूत्र और राजप्रश्नीयसूत्र ये दो ग्रन्थ ऐसे है जिनमें क्रमशः सन्यासियों के साधना के विभिन्न रूपों का एवं आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। अतः ये दोनों ग्रन्थ आंशिक रूप से जैन दार्शनिक से संबंधित माने जा सकते हैं। सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति और जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ये तीन ग्रन्थ मुख्य रूप से जैन खगोल और भूगोल से संबंधित है, उपांग साहित्य के शेष पांचों ग्रन्थ मूलतः कथात्मक ही है। इनके पश्चात् छेद सूत्रों का क्रम आता है। मूर्तिपूजक परम्परा छः छेद ग्रन्थों को मानती है, जबकि स्थानकवासी और तेरापंथी परम्परा में छेद सूत्रों की संख्या चार मानी गयी है। स्थानकवासी परम्परा के अनुसार दशाश्रुतस्कंध, बृहद्कल्प, व्यवहार और निषीथ ये चार छेद ग्रन्थ हैं, जो मूर्तिपूजक परम्परा को भी मान्य है। इन चारों का संबंध विशेष रूप से प्रायश्चित्य और दण्ड व्यवस्था से है। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा को मान्य जीतकल्प और महानिषीथ - ये दोनों ग्रन्थ भी मूलतः तो प्रायश्चित्य और दण्डव्यवस्था से संबंधित ही रहे है। अतः इन्हें किसी सीमा तक जैन आचारमीमांसा के साथ जोड़ा जा सकता है। मूलसूत्र और चुलिकासूत्रों में भी कुल मिलाकर छह या सात ग्रन्थों का समावेश होता है। इनमें उत्तराध्ययनसूत्र एक प्रमुख ग्रन्थ है, जो मुख्य रूप से जैन साधना और आचार व्यवस्था से सम्बन्धित है। किन्तु इसके 28वें और 36वें अध्याय में जैन तत्त्वमीमांसा की चर्चा देखी जा सकती है। दसवैकालिकसूत्र मुख्यतः जैन मुनि जीवन की आचार व्यवस्था से संबंधित है। इसके अतिरिक्त श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा के अनुसार मूल ग्रन्थों में उत्तराध्ययन, दशवैकालिक एवं आवश्यक के अतिरिक्त ओघनिर्युक्ति और पिण्डनिर्युक्ति को भी समाहित माना जाता है। ये दोनों ग्रन्थ जैन मुनि के सामान्य आचार

और भिक्षाविधि से सम्बन्धित है, अतः किसी सीमा तक इनको भी जैन आचार मीमांसा के अंग माने जा सकते है। स्थानकवासी परम्परा में मूल एवं मूर्तिपूजक परम्परा में चूलिकासूत्र के नाम से प्रसिद्ध नन्दीसूत्र और अनुयोगद्वार माने जाते है। इनमें नन्दीसूत्र मूलतः पांच ज्ञानों की विवेचना करता है, अतः इसे जैन ज्ञानमीमांसा के दार्शनिक ग्रन्थों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। यद्यपि नन्दीसूत्र में जैन इतिहास के भी कुछ अर्ध खुले तथ्य भी समाहित है। अनुयोगद्वार सूत्र को जैन दार्शनिक मान्यताओं को समझने की विश्लेषणात्मक विधि कहा जा सकता है। जैन दार्शनिक प्रश्नों को समझने के लिए अनेकांत, नय और निक्षेप की अवधारणाएँ तो प्रमुख है ही इसके अतिरिक्त अनुयोगद्वारों की व्यवस्था भी महत्वपूर्ण रही है। जैनदर्शन का निक्षेप का सिद्धान्त यह बताता है कि किसी शब्द के अर्थ का घटन किस प्रकार से किया जा सकता है। उसी प्रकार नय का सिद्धान्त वाक्य या कथन के अर्थ घटन की प्रक्रिया को समझाता है। अनुयोगद्वार में किस विषय की किस-किस दृष्टि से विवेचना की जा सकती है, इसे स्पष्ट करता है। अतः यह जैन दार्शनिक साहित्य का एक प्रमुख ग्रन्थ माना जा सकता है। जहाँ तक आवश्यकसूत्र का प्रश्न है, वह मूलतः जैन साधना का ग्रन्थ है। इस प्रकार जैन आगमिक साहित्य में मुख्य रूप से दार्शनिक विषयों को इस तरह से प्रस्तुत किया गया है, कि वे जैन धर्म की साधना विधि के साथ भी जुड़ सके। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा आगमों के अन्तर्गत प्रकीर्णक साहित्य को भी मानती है। प्रकीर्णकों का मुख्य विषय दार्शनिक विवेचना न होकर साधना संबंधी विवेचना है। फिर भी वे सभी प्रायः जैन साधना एवं आचार से संबंधित माने जा सकते है। क्योंकि लगभग 6-7 प्रकीर्णकों का विषय तो समाधिमरण की साधना है।

जैन प्राकृत साहित्य के अन्तर्गत श्वेताम्बर परम्परा द्वारा मान्य आगमों के अतिरिक्त दिगम्बर परम्परा के आगम तुल्य अनेक ग्रन्थ भी आते है। इन ग्रन्थों की विशेषता यह है कि ये सभी ग्रन्थ मूलतः जैन दार्शनिक साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है। इनमें सर्वप्रथम कसायपाहुड और षट्खण्डागम का क्रम आता है। जहाँ कसायपाहुड जैन कर्मसिद्धान्त की मार्गणास्थान, गुणस्थान एवं जीवस्थान सम्बन्धी अवधारणाओं की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत करता है। इनके अतिरिक्त मूलाचार नामक जो प्राचीन ग्रन्थ है, वह भी मुख्य रूप से जैन आचार और विशेष रूप से मुनि आचार की विवेचना करता है। भगवतीआराधना में भी मुख्य रूप से जैन साधना और विशेष रूप से समाधिमरण की साधना का विवेचन है। इसके अतिरिक्त जैन दर्शन साहित्य के रूप में कुन्दकुन्द के समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकायसार और अष्टप्राभृत, दशभक्ति आदि ग्रन्थ प्रमुख है। इनमें समयसार में मुख्य रूप से तो आत्म तत्त्व के स्वरूप की विवेचना है, किन्तु प्रांसगिक रूप से आत्मा के कम-आश्रव बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष की चर्चा भी इसमें मिल जाती है। इस दृष्टि से इसे जैन तत्त्वमीमांसा का मुख्य ग्रन्थ माना जाता है। इसी प्रकार उनका पंचास्तिकाय नामक ग्रन्थ भी पाँच अस्तिकायों की चर्चा करने के कारण जैन तत्त्वमीमांसा का एक प्रमुख ग्रन्थ माना जाता है। प्रवचनसार, नियमसार, रयनसार, अष्टप्राभृत आदि का संबंध जैन साधना से रहा हुआ है। अतः ये ग्रन्थ भी किसी सीमा तक जैन तत्त्वमीमांसा और आचारमीमांसा से सबंधित रहे है। दिगम्बर परम्परा के प्राकृत के अन्य प्रमुख ग्रन्थों में गोमट्टसार विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस ग्रन्थ का मुख्य संबंध तो जैन कर्म सिद्धान्त से है। इसके अतिरिक्त परम्परा में कुछ अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थ भी जैन दार्शनिक ग्रन्थों में समाहित किये जा सकते है, जैसे-परम्परा प्रकाश आदि। दिगम्बर परम्परा में कुछ पुराण भी अपभ्रंश भाषा में मिलते है,

इनमें भी जैन तत्त्वमीमांसा और जैन आचारमीमांसा से संबंधित विषय विपुल मात्रा में उपलब्ध है। यद्यपि यहाँ यह ज्ञातव्य है कि जैनों का ज्ञानमीमांसा संबंधी विपुल साहित्य संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध है।

प्राकृत आगमिक व्याख्या साहित्य में मुख्य रूप से सूत्रकृतांग निर्युक्ति में भी तत्कालीन दार्शनिक मान्यताओं की समीक्षा ही परिलक्षित होती है। निर्युक्ति साहित्य का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ उत्तराध्ययन निर्युक्ति है, जिसमें जैन तत्त्वमीमांसा और आचारमीमांसा की कुछ चर्चा ही परिलक्षित होती है। इसके पश्चात् शेष निर्युक्तिया मुख्यतया जैन आचार की ही चर्चा करती हैं। निर्युक्तियों में आवश्यक निर्युक्ति अवश्य ही एक बृहद्काय ग्रन्थ है, इसमें जैन दर्शन एवं जैन आचार पद्धति की चर्चा उपलब्ध होती है। शेष निर्युक्तियाँ भी प्रायश्चित एवं जैन साधना विधि की चर्चा करती है।

निर्युक्ति-साहित्य के पश्चात् भाष्य-साहित्य का क्रम आता है। इसमें मुख्य रूप से विशेषावश्यकभाष्य ही ऐसा ग्रन्थ है, जो दार्शनिक चर्चाओं से युक्त है। इसके प्रथम खण्ड में जैन ज्ञानमीमांसा और विशेष रूप से पाँच ज्ञानों उनके उपप्रकारों और पारस्परिक सहसंबंधों की चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त इसके गणधरवाद वाले खण्ड में आत्मा के अस्तित्त्व के साथ-साथ जैनकर्म सिद्धान्त की गम्भीर चर्चा है। प्रथमतया यह खण्ड गणधरों के संदेहो और उनके उत्तरो की व्याख्या प्रस्तुत करता है, उसमें स्वर्ग, नरक, पुर्नजन्म, कर्म और कर्मफल आदि की गम्भीर चर्चा है। भाष्यसाहित्य के शेष ग्रन्थों में मुख्य रूप से जैन आचार, प्रायश्चित-व्यवस्था और साधना पद्धति की चर्चा की गई है। भाष्यों के पश्चात् चूर्णि साहित्य का क्रम आता है, चूर्णि साहित्य की भाषा प्राकृत एवं संस्कृत भाषा का मिश्रित रूप है। इनमें

भी आगमों की चूर्णियों की अपेक्षा मुख्य रूप से छेदसूत्रों की चूर्णिया ही अधिक प्रमुख है। उनमें एक आवश्यक चूर्णि ही ऐसी है, जो कुछ दार्शनिक चर्चाओं को प्रस्तुत करती है। शेष चूर्णियों का संबंध आचार-शास्त्र से और उनमें भी विशेष रूप से उपसर्ग और अपवाद मार्ग की साधना से है। उसमें पश्चात् लगभग आठवीं शताब्दी के आगमों की व्याख्या के रूप में संस्कृत टीकाओं का प्रचलन हुआ, इनमें दार्शनिक प्रश्नों की गम्भीर चर्चा है, किन्तु इसकी विशेष चर्चा हम जैन दार्शनिक संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत ही करेंगे।

यद्यपि प्राचीनकाल में कुछ दार्शनिक ग्रन्थ भी प्राकृत भाषा में लिखे गये है। इनमें मुख्य रूप से सन्मति तर्क का स्थान सर्वोपरि है, सन्मति तर्क मूलतः तो जैनों के अनेकान्तवाद की स्थापना करने वाला ग्रन्थ है, फिर भी इसमें अनेक दार्शनिक प्रश्नों की चर्चा करके अनेकांत के माध्यम से उसमें समन्वय का प्रयत्न है। यह ग्रन्थ जहाँ एक ओर दार्शनिक एकान्तवादों की समीक्षा करता है, वहीं प्रसगोंपेत अनेकांतवाद की स्थापना का प्रयत्न भी करता है। दार्शनिक दृष्टि से इसमें सामान्य और विशेष की चर्चा ही प्रमुख रूप से हुई है, और यह बताया गया है कि वस्तु-तत्त्व सामान्यविशेषात्मक होता है, और इसी आधार पर वह एकान्त रूप से सामान्य या विशेष पर बल देने वाली दार्शनिक मान्यताओं की समीक्षा भी करता है। इसके अतिरिक्त इसमें जैन परम्परा के प्रचलित ज्ञान और दर्शन के पारस्परिक संबंध को भी सुलझाने का भी प्रयत्न भी किया गया है।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि दिगम्बर परम्परा में जहाँ प्राकृत भाषा में अनेक दार्शनिक ग्रन्थ की रचना की, वहाँ श्वेताम्बर परम्परा में दार्शनिक प्रश्नों की चर्चा हेतु संस्कृत भाषा को ही प्रमुखता ही है और इसका परिणाम यह हुआ की श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्पराओं में दार्शनिक

चर्चाओं को लेकर मुख्य रूप से संस्कृत भाषा में ही ग्रन्थ लिखे गये। आगे हम जैनों के दार्शनिक संस्कृत साहित्य की चर्चा करेंगे।

संस्कृत भाषा का जैन दार्शनिक साहित्य :

यद्यपि जैन तत्त्वज्ञान से संबंधित विषयों का प्रतिपादन आगमों में मिलता है, किन्तु सभी आगम प्राकृत भाषा में ही निबद्ध है। जैन तत्त्वज्ञान से संबंधित प्रथम सूत्र ग्रन्थ की रचना उमास्वाति (लगभग 2 री शती) ने संस्कृत भाषा में ही की थी। उमास्वाति के काल तक विविध दार्शनिक निकायों के सूत्र ग्रन्थ अस्तित्व में आ चुके थे, जैसे वैशेषिकसूत्र, सांख्यसूत्र, योगसूत्र, न्यायसूत्र आदि। अतः उमास्वाति के लिए यह आवश्यक था कि वे जैनधर्मदर्शन से संबंधित विषयों को समाहित करते हुए सूत्र-शैली में संस्कृत भाषा में किसी ग्रन्थ की रचना करे। उमास्वाति के पश्चात् सिद्धसेन, समन्तभद्र आदि ने भी जैन दर्शन पर संस्कृत भाषा में ग्रन्थ लिखे। सिद्धसेन दिवाकर ने भारतीय दार्शनिक धाराओं की अवधारणाओं की समीक्षा को लेकर कुछ द्वात्रिंशिकाओं की रचना संस्कृत भाषा में की थी। जिनमें न्यायवतार जैन प्रमाण मीमांसा का प्रमुख ग्रन्थ है। इसी प्रकार आचार्य समन्तभद्र ने भी आप्त-मीमांसा युक्त्यानुशासन एवं स्वयम्भूस्तोत्र नामक ग्रन्थों की रचना संस्कृत भाषा में की थी। जिनमें न्यायवतार जैन प्रमाण मीमांसा का प्रमुख ग्रन्थ है। इसी इसी प्रकार आचार्य समन्तभद्र ने भी आप्त-मीमांसा युक्त्यानुशासन एवं स्वयम्भूस्तोत्र नामक ग्रन्थों की रचना संस्कृत भाषा में की। इन सभी की विषय वस्तु दर्शन से संबंधित रही है। इस प्रकार ईसा की तीसरी-चौथी शताब्दी से जैन दार्शनिक साहित्य संस्कृत में लिखा जाने लगा था। उमास्वाति ने स्वयं ही तत्त्वार्थसूत्र के साथ-साथ उसका स्वोपज्ञ भाष्य भी संस्कृत में लिखा था। लगभग 5वीं शताब्दी के अन्त और 6वीं शताब्दी के प्रारम्भ में दिगम्बराचार्य पूज्यपाद ने तत्त्वार्थसूत्र पर **सर्वार्थसिद्धि** नामक टीका संस्कृत में लिखी। इसके

अतिरिक्त उन्होंने जैनसाधना के सन्दर्भ में **समाधितंत्र** और **इष्टोपदेश** नामक ग्रन्थ भी संस्कृत भाषा में ही लिखे। इसी काल खण्ड में श्वेताम्बर परम्परा में मल्लवादी ने 'द्वादशारनयाचक्र' की रचना संस्कृत भाषा में की, जिसमें प्रमुख रूप से सभी भारतीय दार्शनिक परम्पराएँ पूर्व पक्ष के रूप में प्रस्तुत की गई और उन्हीं में से उनकी विरोधी धारा को उत्तरपक्ष के रूप में प्रस्तुत कर उनकी समीक्षा भी की गई। इसके पश्चात् 5वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिनभद्रगणि श्रमाश्रमण ने विशेषावश्यकभाष्य तो प्राकृत में लिखा, किन्तु उसकी स्वोपज्ञ टीका संस्कृत में लिखी थी। उनके पश्चात् 7वीं शतीं के प्रारम्भ में कोट्टाचार्य ने भी विशेषावशयकभाष्य पर संस्कृत भाषा में टीका लिखी थी, जो प्राचीन भारतीय दार्शनिक मान्यताओं का गम्भीर विवेचन प्रस्तुत करती है, साथ ही उनकी समीक्षा भी करती है। लगभग 7वीं शताब्दी में ही सिद्धसेन गणि ने श्वेताम्बर परम्परा में तत्त्वार्थसूत्र की टीका लिखी थी, इसी क्रम में सिंहशूरगणि ने द्वादशार नयचक्र पर संस्कृत भाषा में टीका लिखी थी। 8वीं शताब्दी में प्रसिद्ध जैनाचार्य हरिभद्रसूरि हुए, जिन्होंने प्राकृत और संस्कृत दोनों ही भाषाओं में अपनी कलम चलाई। हरिभद्रसूरि ने जहाँ एक ओर अनेक जैनागमों पर संस्कृत में टीकाएँ लिखी, वहीं उन्होंने अनेक दार्शनिक ग्रन्थों का भी संस्कृत भाषा में प्रणयन किया। उनके द्वारा रचित निम्न दार्शनिक ग्रन्थ अधिक प्रसिद्ध है– षड्दर्शनसमुच्चय, शास्त्रवार्तासमुच्चय, अनेकान्तजयपताका, अनेकान्तवादप्रवेश, अनेकान्तप्रघट्ट आदि। साथ ही इन्होंने बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग के न्यायप्रवेश की संस्कृत टीका भी लिखी। इसके अतिरिक्त उन्होंने **योगदृष्टिसमुच्चय** आदि ग्रन्थ भी संस्कृत भाषा में लिखे। हरिभद्र के समकाल में या उनके कुछ पश्चात् दिगम्बर परम्परा में आचार्य अकलंक और विद्यानन्दसूरि हुए, जिन्होंने अनेक दार्शनिक ग्रन्थों की रचना की। जहाँ अकलंक ने तत्त्वार्थसूत्र पर **राजवर्तिक**

टीका के साथ-साथ न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय, प्रमाणसंग्रह, लधीयस्त्री, अष्टशती एवं प्रमाणसंग्रह आदि दार्शनिक ग्रन्थों की संस्कृत में रचना की। वही विद्यानन्द ने भी तत्त्वार्थसूत्र पर श्लोकवार्तिकटीका के साथ-साथ आप्तपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, सत्यशासनपरीक्षा, अष्टसहस्त्री आदि गम्भीर दार्शनिक ग्रन्थों की संस्कृत भाषा में रचना की। 10वीं शताब्दी के प्रारम्भ में सिद्धसेन के न्यायावतार पर श्वेताम्बराचार्य सिद्धऋषि ने विस्तृत टीका की रचना की। इसीकाल में प्रभाचन्द्र, कुमुदचन्द्र एवं वादिराजसूरि नामक दिगम्बर आचार्यो ने क्रमशः प्रंमेयकमलमार्तंड न्यायकुमुदचन्द्र, न्यायविनिश्चय टीका आदि महत्त्वपूर्ण दार्शनिक ग्रन्थों की रचना की। इसके पश्चात 11वीं शताब्दी में देवसेन ने लघुनयचक्र, बृहदनयचक्र, आलापपद्धति, माणिक्यनन्दी के परीक्षामुख तथा अनन्तवीर्य ने सिद्धिविनिश्चय टीका आदि दार्शनिक कृतियों का सृजन किया। इसी कालखण्ड में श्वेताम्बर परम्परा के अभयदेव सूरि ने सिद्धसेन के सन्मतितर्क पर वादमहार्णव नामक विशाल टीका ग्रन्थ की रचना की। इसी क्रम में दिगम्बर आचार्य अनन्तकीर्ति ने लघुसर्वज्ञसिद्धि, बृहद्सर्वज्ञसिद्धि, प्रमाणनिर्णय आदि दार्शनिक ग्रन्थों की रचना की थी। इसी काल खण्ड में श्वेताम्बर परम्परा में आचार्य वादिदेवसूरि हुए उन्होंने प्रमाणनयतत्वालोक तथा उसी पर स्वोपज्ञ टीका के रूप में स्यादवादरत्नाकर जैसे जैन न्याय के ग्रन्थों का निर्माण किया। उनके शिष्य रत्नप्रभसूरि ने प्रमाणनयतत्त्वालोक पर टीका के रूप में रत्नाकरावतारिका की रचना की थी। इन सभी में भारतीय दर्शनों एवं उनके न्याय शास्त्र की अनेक मान्यताओं की समीक्षा भी है। 12वीं शताब्दी में हुए श्वेताम्बर आचार्य हेमचन्द्र ने मुख्य रूप से जैनन्याय पर प्रमाणमीमांसा (अपूर्ण) और दार्शनिक समीक्षा के रूप में अन्ययोगव्यवच्छेदिका ऐसे दो महत्त्वपूर्ण दार्शनिक ग्रन्थों की रचना की। यद्यपि संस्कृत व्याकरण एवं साहित्य के क्षेत्र में उनका

अवदान प्रचुर मात्रा है, तथापि हमने यहाँ उनके दार्शनिक ग्रन्थों की ही चर्चा की है। यद्यपि 13वीं, 14वीं, 15वीं और 16वीं शताब्दी में भी जैन आचार्यों ने संस्कृत भाषा में कुछ दार्शनिक टीका ग्रन्थों की रचना की थी, इनमें स्याद्वादमंजरी एवं शास्त्रवार्तासमुच्चय एवं षट्दर्शनसमुच्चय की टीकाएँ मुख्य है। किन्तु कुछ ग्रन्थ भी लिखे गये, फिर भी वे अधिक महत्वपूर्ण न होने से हम यहाँ उनकी चर्चा नहीं कर रहे हैं, यद्यपि इस काल खण्ड में कुछ दार्शनिक ग्रन्थों की टीकाएँ जैसे अन्ययोगव्यछेदिका की स्यादवाद-मन्जरी नामक टीका, षडदर्शन समुच्चय की टीका आदि भी लिखी गई थी, किन्तु विस्तार भय से उन सब में जाना उचित नहीं हैं। 17वीं शताब्दी में श्वेताम्बर परम्परा में उपाध्याय यशोविजय नामक एक प्रसिद्ध जैन लेखक हुए, जिनके अध्यात्मसार, ज्ञानसार आदि दर्शन के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। अध्यात्म के क्षेत्र में अध्यात्ममतसमीक्षा, अध्यात्मसार, ज्ञानसार आदि तथा दर्शन के क्षेत्र में जैन तर्कभाषा, नयोपदेश, नयसहस्य, न्यायालोक, स्यादवादकल्पलता आदि उनके अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। उनके पश्चात् 18वीं, 19वीं और 20वीं शताब्दी में जैन दर्शन पर संस्कृत भाषा में कोई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा गया हो यह हमारी जानकारी में नहीं है, यद्यपि तत्त्वार्थसूत्र की शैली पर आचार्य तुलसी के जैनसिद्धान्तदीपिका और मतोनुशासनम् नामक ग्रन्थों की संस्कृत भाषा में रचना की है, फिर भी इस काल खण्ड में संस्कृत भाषा में दार्शनिक ग्रन्थों के लेखन की प्रवृत्ति नहीवंत् ही रही हैं।

जहाँ तक अपभ्रंश भाषा में जैन दार्शनिक साहित्य का निर्देश उपलब्ध होता है, उसमें दो ग्रन्थ महत्वपूर्ण माने जाते है— 1. परमात्मप्रकाश और 2. प्राभृतदोहा (पाउड दोहा)। यद्यपि ये दोनों ग्रन्थ दर्शन की अपेक्षा जैन साधना पर अधिक बल देते है, फिर भी इन्हें अपभ्रंश के दार्शनिक जैन साहित्य का महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जा सकता है, किन्तु

इनकी चर्चा हम प्राकृत के जैन दार्शनिक साहित्य के साथ कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त दिगम्बर जैन परम्परा में स्वयंभू से लेकर मध्य काल तक अनेक पुराणों और काव्य ग्रन्थों की संस्कृत में रचनाएं हुई हैं। उनमें भी जैन दर्शन की तत्त्वमीमांसा और आचारमीमांसा का विवरण हमें मिल जाता हैं।

अन्य भाषाओं में जैन दार्शनिक साहित्य :

अन्य भारतीय भाषाओं में जैन दार्शनिक साहित्य का निर्माण हुआ है, उसमें आगमों के टब्बे प्रमुख है। इनमें भी आगमों में वर्णित दार्शनिक मान्यताओं का मरूगुर्जर भाषा में निर्देश हुआ है। मरूगुर्जर भाषा में जैन दर्शन का कोई विशिष्ट ग्रन्थ लिखा गया है, यह हमारी जानकारी में नहीं है, किन्तु हम सम्भावनाओं से इनकार नहीं करते है। मरूगुर्जर में जो दार्शनिक चर्चाएँ हुई है, वे प्रायः खण्डन मण्डनात्मक हुई है। इनमें भी अन्य मतों की अपेक्षा जैन धर्म दर्शन की विविध शाखाओं व प्रशाखाओं के पारस्परिक विवादों का ही अधिक उल्लेख है। जहाँ तक पुरानी हिन्दी और आधुनिक हिन्दी का प्रश्न है, उनमें भी पर्याप्त रूप से जैन दार्शनिक साहित्य का निर्वाण हुआ हो, किन्तु उनमें से अधिकांश विषय पारस्परिक दार्शनिक अवधारणाओं से संबंधित है। इनमें मेरी जानकारी के अनुसार एक प्रमुख ग्रन्थ अमोलकऋषिजी कृत जैनतत्त्वप्रकाश है। यह सर्वांगीण रूप से जैन दर्शन के विविध पक्षों की चर्चा करता है। यह सम्भावना है कि उनके द्वारा इस प्रकार के अन्य ग्रन्थ भी लिखे गये होगे, किन्तु उनकी मुझे जानकारी उपलब्ध न होने के कारण उन पर अधिक कुछ कह पाना सम्भव नहीं है। यद्यपि गुणस्थान सिद्धान्त पर अढीशतद्वारी भी इन्हीं का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यहाँ तक आधुनिक हिन्दी में लिखे गये जैन दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रश्न है, उनमें पं. फूलचन्द्जी द्वारा लिखित जैनतत्त्वमीमांसा एक प्रमुख ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त पं. (डॉ.) दरबारीलालजी कोठिया

द्वारा रचित 'जैनतत्त्व ज्ञानमीमांसा', पं. सुमेरचन्द दीवाकर द्वारा रचित 'जैन शासन', पं. दलसुखभाई द्वारा रचित 'आगमयुग का जैनदर्शन', विजयमुनिजी रचित 'जैन दर्शन के मूलतत्त्व', आचार्य महाप्रज्ञजी द्वारा 'जैनदर्शन मनन और मीमांसा', पं. देवेन्द्रमुनिजी द्वारा रचित 'जैनदर्शन स्वरूप व विश्लेषण' एवं 'जैनदर्शन मनन और मूल्यांकन', पं. महेन्द्रकुमारजी जैन द्वारा रचित 'जैनदर्शन', मुनि महेन्द्रकुमार द्वारा रचित 'जैन दर्शन एवं विद्याम्', जिनेन्द्रवर्णी द्वारा रचित 'जैन दर्शन में पदार्थ विज्ञान', डॉ. मोहनलाल मेहता द्वारा रचित 'जैनदर्शन', मुनि न्यायविजयजी द्वारा रचित 'जैनदर्शन' प्रमुख आदि ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त जैनधर्मदर्शन के विविध पक्षों को लेकर हिन्दी में पर्याप्त साहित्य की रचना की है। इनमें डॉ. रतनचन्द्र जैन का शोध प्रबन्ध-'जैन दर्शन में निश्चय और व्यवहारनय, एक परिशीलन', पं. कैलाशचन्द्रशास्त्री का 'जैनन्याय एवं प्रमाण नय निक्षेप प्रकाश', डॉ. सागरमल जैन के 'जैनभाषादर्शन', 'जैन दर्शन में द्रव्य गुण और पर्याय', 'जैन दर्शन का गुणस्थान सिद्धान्त' प्रमुख ग्रन्थ है। यहाँ हमने हिन्दी के कुछ ग्रन्थों का उल्लेख किया है, वैसे तो हिन्दी भाषा जैन धर्म एवं दर्शन से संबंधित सैकड़ों ग्रन्थ है। जिनके नामोल्लेख से यह निबन्ध-निबन्ध न रहकर एक ग्रन्थ ही बन जायेगा। इसी क्रम में साध्वी धर्मशिलाजी का 'नवतत्त्व', मुनिप्रमाणसागरजी का 'जैन धर्म और दर्शन' साध्वी विद्युतप्रभा जी का 'द्रव्यविज्ञान', समणी मंगलप्रज्ञाजी की 'आर्हतीदृष्टि' भी जैनधर्मदर्शन के प्रमुख ग्रन्थ माने जाते है। हिन्दी भाषा के अतिरिक्त बंगाली, पंजाबी, मराठी और कन्नड़ भाषाओं में भी आधुनिक युग में जैनधर्मदर्शन से संबंधित कुछ ग्रन्थ प्रकाश में आए है। विस्तार भय से उन सब की चर्चा करना यहाँ सम्भव नहीं है। दार्शनिक समस्याओं के लेकर पं. सुखलालजी के 'दर्शन और चिन्तन' में प्रकाशित कुछ महत्वपूर्ण आलेख भी इस दृष्टि से विचारणीय है। इसी

क्रम में पं. कन्हैयालालजी लोढ़ा ने भी नव तत्त्वों पर अलग-अलग रूप से स्वतंत्र ग्रन्थ लिखे हैं। वैसे गुजराती भाषा में भी पर्याप्त रूप से जैन धर्म दर्शन संबंधी साहित्य के ग्रन्थ लिखे गये है। किन्तु इस संबंध में मेरी जानकारी की अल्पता के कारण उन पर विशेष कुछ लिख पाना सम्भव नहीं है। यद्यपि अंग्रेजी भारतीय भाषाओं का एक अंग नहीं है, फिर भी विश्व की एक प्रमुख भाषा होने के कारण उसमें भी जैन दर्शन सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। उसमें प्रो. नटमल जी टाटिया का 'जैन स्टडीज', डॉ. इन्द्रशास्त्री का 'जैन इपीस्टोमोंलाजी', जे.सी. सिकन्दर का 'जैन थ्योरी आफ रियलीटी', प्रो. बी. आर. जैन का 'कासमोलाजी ओल्ड एण्ड न्यू' आदि कुछ प्रमुख ग्रन्थ माने जा सकते है। यद्यपि आज कुछ मूल ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद सहित लगभग पॉच सौ अधिक ग्रन्थ अंग्रेजी भाषा में भी उपलब्ध-फ्रेंच, ऊर्दू, पंजाबी, बंगाली आदि में क्वचित जैनधर्मदर्शन सम्बन्धी ग्रन्थ उपलब्ध है।

कुवलय माला

श्री केवल मुनि

मिलन :

कुमार ने कहा—

तुम लोग श्रद्धाहीन, मन्त्रहीन और सत्वहीन हो। इसलिए तुम्हें सिद्धि प्राप्त नहीं हुई।

हमने भी सिद्ध-देव-श्रुत कहकर मन्त्र का ध्यान किया था? धातुवादियों ने कहा।

किन्तु तुम लोग देवाधिदेव अरिहंत और सिद्धदेव को भूल गए। यही तुम्हारी गलती है। —कुमार ने उन्हें समझाया।

धातुवादियों ने अपनी गलती सुधारी। उन्हें कुमार द्वारा बोले गए मन्त्र पर असीम श्रद्धा हो गई। कुमार चलने लगा तो उन्होंने उसके चरण पकड़ कर कहा—

आप हमारे गुरु है। हमारी सेवा स्वीकार करिए।

कुमार ने पीछा छुड़ाने के लिए कहा—

मैंने तुम्हें मन्त्र दे दिया। इसके आराधन से सिद्धि प्राप्त करो। तुम्हारी सेवा मैं स्वीकार करता है। जब भी तुम सुनो कि कुवलयचन्द्र राजा बन गया है तो अयोध्या आ जाना।

कुमार वहां से चल दिया और शीघ्र ही अपने शिविर में जा पहुँचा।

कुवलयमाला इस बीच जाग उठी थी। पति को अपनी शैय्या पर न देखकर चिन्तित हो गई। उसके हृदय में तरह-तरह के विचार उठने लगे। स्त्रियाँ स्वभावतः भीरु और शंकालु जो होती है। कुमार के पहुँचने पर उसकी जान में जान आई। बड़े प्रेम से पति से बोली—

आप इतनी रात कहाँ चले गए थे? मेरी तो जान ही सूख गई। यदि हर्ज न हो तो मुझे बता दीजिए।

कुमार ने गम्भीर होकर कहा—

प्रिये! पति-पत्नी में कोई छिपाव नहीं होता। ऐसी कोई बात नहीं कि मैं तुमसे न कह सकूँ।

कुमार ने धातुवादियों की सम्पूर्ण घटना सुना दी। कुवलय माला के हृदय में फिर शंका उठी—

और यदि आप स्वर्ण बनाने में सफल न होते तो......?

होता क्यों नहीं? योनि प्राभृत में संकलित जिनवचन कभी मिथ्या नहीं हो सकते। प्रिये! सूर्य-चन्द्र टल सकते हैं, मेरुचूला हिल सकती है, समुद्र मर्यादा का उल्लंघन कर सकता है किन्तु जिनेन्द्र भगवान अन्यथावादी नहीं होते। मैं अवश्य सफल होता।

तो वे धातुवादी क्यों असफल रहे?

कुमार ने कहा—

उसका कारण था—वे सत्य, शौच, ब्रह्मचर्य रहित, तृष्णा वाले, लुब्धक, मित्रों को ठगने वाले, कृतघ्न गुरु निन्दा करने वाले, सच्चे देव की शरण न रखने वाले, श्रद्धाहीन, आलसी और उद्यम बिना ही सिद्धि चाहने वाले थे। ऐसे लोगों को सिद्धि और सफलता नहीं मिलती।

इसके अनन्तर रात भर दोनों पति-पत्नी सिद्धि आदि के बारे में बातें करते रहे। कुवलयचन्द्र अपनी प्रिया को जिन प्रणीत तत्त्वों को समझाता रहा।

प्रभात हो गया। प्रातःकालीन धार्मिक क्रियाओं से निपटकर सबने प्रयाण कर दिया और अनुक्रम से अयोध्या की सीमा में पहुँच गए। कुमार महेन्द्र ने एक दूत द्वारा आगमन की सूचना राजा दृढ़वर्म को भिजवा दी। नगर के बाहर आकर ही पिता ने अपने पुत्र का स्वागत किया। पुत्र ने पिता के चरण स्पर्श किये। पिता ने उसे आलिंगन में बाँध लिया। माता भी अपने पुत्र से मिलकर बहुत हर्षित हुई। पुत्र ने माता

क चरण स्पर्श करके शुभाशीष पाया। कुवलयमाला ने भी सास-ससुर के चरण स्पर्श करके आशीर्वाद प्राप्त किया।

बड़े उत्सवपूर्वक कुमार का नगर प्रवेश कराया गया। अयोध्या दुलहिन की तरह सज गई। सभी प्रसन्न और हर्षित थे। महीनों तक उत्सव मनाये जाते रहे।

माता-पिता ने पुत्र से उसके सुख-दुःख की गाथा पूछी। कुमार ने सब कुछ विस्तार से बताया। रानी प्रियंगुश्यामा को तो ऐसा लगा- मानों कुमार को उसने दुबारा ही प्राप्त किया है। बात भी सत्य थी– घोड़े द्वारा अपहरण किये जाने के बाद एक बार तो सभी का दिल टूट गया था। कुमार के मिलने की आशा ही न रही थी।

माता ने कहा—

पुत्र! हम तो निराश हो ही गए थे। यह तो ज्योतिषियों का आश्वासन था कि धैर्य बना रहा अन्यथा मेरे प्राण तो कब के निकल गए होते।

कुमार ने कहा—

ऐसा न कहो माँ, मैं किसकी सेवा करता। यह तो भाग्य योग था। इतने दिन का वियोग भाग्य में लिखा था सो हो गया।

इस प्रकार सुख-दुःख की बाते करते सबका समय सुख से व्यतीत हो रहा था।

दीक्षा :

कुमार कुवलयचन्द्र पिता के साथ राजसभा में जाने लगा। धीरे-धीरे उसने राज्य-कार्य सँभाल लिया। पिता का शासन-भार हल्का हुआ। उनकी धर्म की ओर रुचि हुई। एक दिन पुत्र से बोले–

वत्स! इस संसार में सुख का मूल हेतु धर्म है। मनुष्य अपने कृकर्मों का ही फल पाता है। अब तुम समर्थ हो गये हो। शासन भार तुम संभालो। मैं धर्म में चित्त लगाऊँगा।

पुत्र ने कहा—

धर्म-कार्य का विचार तो उत्तम है, किन्तु ऐसे धर्म का पालन करना चाहिए जिससे परिश्रम निष्फल न हो।

अनेक धर्म हैं। उनमें से जिसका भी पालन किया जाय वहीं ठीक है। पिता ने अपनी सम्मति दी।

सभी धर्म समान नहीं होते। कुछ धर्मों को लोभ और मान के वश में होकर अधकचरे ज्ञानी प्रचलित कर देते हैं। वे कुमत कहलाते है। उनके पालन से आत्मा ढोंग और आडम्बर में फँस जाता है।

तो फिर सच्चा धर्म कौन-सा है? इसकी पहिचान कैसे हो सकती है?

किसी भी क्रिया की पहिचान उसका फल है। यदि फल अच्छा है तो धर्म भी अच्छा है।

अनेक क्रियाएँ ऐसी है जिनका फल दूसरे जन्म में मिलता है तब इसका निर्णय कैसे किया जाय?

पिताजी! इसके निर्णय का सरल उपाय है– कुलदेवी से पूछना-आप उसकी आराधना करिए। जिस धर्म को वह श्रेष्ठ बतावे, उसी का अनुसरण कर लीजिए।

यह उपाय राजा को पसन्द आया। देवी-देवताओं पर वैसे ही मनुष्य की अधिक विश्वास होता है; जिसमें तो वह कुलदेवी थी। उसी की कृपा से राजा को कुवलयचन्द्र जैसा पुण्यवान पुत्र प्राप्त हुआ था।

एक रात्रि को राजा ने कुलदेवी की आराधना की। कुलदेवी जयश्री प्रगट हुई। राजा की इच्छा जानकर उसने कहा—

राजन! इस सम्बन्ध में संशय करने की आवश्यकता नहीं। तुम तो आदि जिनेश्वर के पौत्र सोम के कुल में उत्पन्न हुए हो। जिनधर्म ही तुम्हारा धर्म है। इसी का पालन करो। यह सर्वश्रेष्ठ और सत्य है।

इसके पश्चात् देवी ने ब्राह्मी लिपि में लिखा एक शिलालेख दिया। श्रद्धापूर्वक राजा ने शिलालेख ले लिया। देवी अन्तर्धान हो गई। राजा ने कुमार को बुलाया और कहा—

वत्स! कुलदेवी ने यह शिलालेख दिया है। इसे पढ़ो।

कुमार पढ़ने लगा—

सम्यकत्वपूर्वक ज्ञान की आराधना और चारित्र का पालन करना चाहिए। हिंसा, झूठ, चोरी और परिग्रह का त्याग कर दो। रात्रि भोजन न करो। सभी जीवों पर मैत्री भाव रखो। गुणवानों का आदर और दीन-दुखियों पर दया करो। क्रोध, मान, माया, लोभ, को दूर करो। क्रोध के स्थान पर क्षमा, मान की बजाय विनय, माया के स्थान पर सरलता और लोभ के स्थान पर सन्तोष धारण करो।

सभी प्रकार के जीवों की रक्षा के लिए संयम और भिक्षा द्वारा भोजन करना चाहिए। महाव्रतों के पालन, मन-वचन-काया की प्रवृत्तियों के निरोध और समत्वभाव से तुम संसार के दुःखों से मुक्त हो जाओगे। यहीं मुक्ति का मार्ग है।

राजा बोला—

वत्स! कुलदेवी ने धर्म तो बता दिया किन्तु जब तक योग्य गुरु न मिलें तो धर्म का मर्म कौन समझाएगा। इसका आचरण कैसे होगा?

पिताजी! किसी योग्य धर्म-पुरुष के पास संयम ग्रहण करना ही उचित है।

यहीं तो समस्या है? अनेक धर्म पुरुष हैं। सभी अपने-अपने धर्माचरण को श्रेष्ठ बताते हैं। किन्तु उनमें से कौन सत्य है? इसका निर्णय कैसे हो? किस धर्म-पुरुष को गुरु बनाया जाय?

इस समस्या का हल भी सुझाया कुमार ने—

उद्घोषणा करा दीजिए। अनेक धर्मपुरुष आयेंगे। उनमें से जिसका धर्म कुलदेवी द्वारा बताये धर्म के अनुकूल हो, उसे ग्रहण कर लीजिए।

राजा ने पुत्र की बात स्वीकार कर ली। उद्घोषणा करा दी गई। अनेक धर्म-पुरुष आने लगे। राजा ने सबको उचित आदर के साथ ठहराया। राज सभा के बाहर एक विशाल मंडप बनाया गया। सभी धर्म-पुरुषों के लिए उचित आसनों की व्यवस्था थी। राजा सबका अभिवादन कर अपने आसन पर बैठा। समीप ही कुमार कुवलयचन्द्र भी आसीन था। राजा ने कहा—

धर्म-पुरुषों! अपना-अपना धर्म बताओ। जिसका धर्म उत्तम होगा, मैं उसी को स्वीकार कर लूँगा।

सभी धर्म पुरुष राजा को अपने-अपने धर्म की ओर आकर्षित करने के प्रयास में लगे। एक ने कहा—

जीव सर्वत्र व्यापक है। ध्यान से मुक्त होता है और जल से शुद्ध होता है।

राजा ने कहा—

जब जीव सर्वत्र व्यापक है तो ध्यान किस का किया जायेगा और जल भी तो जीवमय है, अशुद्धि के प्रयोग से शुद्धि कैसे होगी?

दूसरे ने कहा—

एक ही आत्मा सर्वभूतों में व्याप्त है। परमब्रह्म ही शुद्ध और नित्य है।

राजा ने कहा—

यदि एक ही आत्मा सर्वत्र व्याप्त है तो एक ही समय कोई दुःखी और कोई सुखी क्यों होता है?

तीसरा बोल उठा—

आत्मा है ही नहीं, यह तो पाँच भूतों (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश) का विकार मात्र है। इसलिए निर्बाध सुख-भोग ही धर्म है।

राज ने तर्क किया—

आत्मा है ही नहीं तो सुख भोग कौन करेगा?

चौथा बोला—

आत्मा तो है, पर है वह क्षणभंगुर।

तो फिर धर्म का—सदाचार का पालन कौन करेगा? किसका निर्वाण होगा?—राजा ने शंका की।

पाँचवें ने बताया—

सभी की संगति का त्याग करके, वल्कल वस्त्र धारण करना और कंदमूल फल खाना यहीं धर्म श्रेष्ठ है।

बिना दिये हुए फल लेना चोही है और कच्चे फल खाना जीव हिंसा।—राजा ने उसके मत को भी अमान्य कर दिया।

छठवें ने अपना मत बताया—

महाराज! गृहस्थ धर्म ही श्रेष्ठ है। गृहस्थ ही ब्राह्मण, दीन-दुःखियों आदि सबका पालन करता है।

दान तो ठीक है किन्तु गृहस्थी को अनचाहे हिंसा भी करनी पड़ती है, संग्रह भी वह करता है—यह तो पाप ही है। राजा ने कहा।

सातवें ने परोपकारी कार्यों को धर्म बताते हुए कहा—

कूआ, तालाब आदि खुदवाना, बाँध बनवाना धर्म है।

इससे परोपकार तो होता है किन्तु भूमि खोदने में भूमि के अन्दर रहने वाले साँप, विच्छू आदि अनेक जीवों की हत्या हो जाती है। राजा को यह मत भी रुचिकर नहीं लगा।

आठवें ने विनय को धर्म बताया—

गुरुजनों, माता-पिता आदि की विनय करना धर्म है। इसी से जीव मुक्त हो जाता है।

तुमने हाथी की पूँछ ही पकड़ी। विनय लौकिक दृष्टि से श्रेष्ठ है, किन्तु यह अकेली ही मोक्ष की कारण नहीं हो सकती। राजा ने यह कहकर उसे भी चुप कर दिया।

अनेक धर्म-पुरुषों को निरुत्तर देखकर अन्य धार्मिक भी विचार में पड़ गए। वे ऐसी युक्तियाँ सोचने लगे जिससे कि राजा को प्रभावित

कर सकें। राजा भी एक-एक कर सबके ऊपर दृष्टि घुमाने लगे। सबसे अलग-थलग उन्हें एक शांतचित्त साधु काष्ठ के साधारण आसन पर बैठ दिखाई दिये। अन्य सभी धर्म-पुरुष मखमली गद्दों पर बैठे थे। राजा आश्चर्य में पड़ गया। यह कैसे धर्म-पुरुष हैं जो भूमि पर बिछे एक सामान्य आसन पर बैठे हैं। एक बार तो उसे अपने सेवकों पर रोष आया। सोचा—कैसे सेवक हैं, इनके लिए उचित आसन की व्यवस्था भी नहीं की; किन्तु दूसरे ही क्षण साधुओं के मुख पर दृष्टि पड़ते ही क्रोध उड़ गया। मुनिराज की शांत मुद्रा से उसका हृदय शीतल हो गया। उत्सुक होकर पूछा—

आपने अपना धर्म नहीं बताया?

मेरा धर्म शाश्वत है राजन्! सम्यक्त्वपूर्वक ज्ञान की आराधना और चारित्र पालन करना यही धर्म है। प्राणिवध, असत्य भाषण, अदत्त-आदान, मैथुन और परिग्रह इनका त्याग करना—यही अरिहंत प्रणीत शाश्वत धर्म है।—मुनि ने गम्भीर स्वर में कहा।

राजा विचार में पड़ गया। सोचने लगा—यही तो कुलदेवी ने बताया था। यही सच्चा धर्म है। उसी समय अपरान्ह सूचक पटह बजा। राजा दृढ़वर्म ने अन्य सब धार्मिकों को उचित आदर पूर्वक विदा कर दिया। अब रह गया राजा, वह साधुजी और कुमार कुवलयचन्द्र। यद्यपि राजा यह तो समझ चुका था कि साधु ने सच्चा धर्म बताया है किन्तु वह अपनी जिज्ञासा और भी शांत करना चाहता था। उसकी कुछ विशेष धर्मचर्चा करने की इच्छा थीं। उसने पूछा—

आपने यह ज्ञान कहाँ से पाया?

आगमों से।—साधुजी ने बताया।

आगम किसे कहते हैं?

आप्त पुरुष के वचनों के संग्रह को।

आप्त पुरुष कौन होते हैं, क्या गुण हैं इनके?

देवाधिदेव अरिहंत देव आप्त कहलाते हैं, वे बारह गुण सम्पन्न और अठारह दोष रहित होते हैं।

राजा ने पुनः प्रश्न किया—

क्या ये आगम प्रामाणिक हैं?

इनकी प्रामाणिकता तो स्वयंसिद्ध है राजन्! ये राग-द्वेष रहित केवलज्ञानियों के उपदेश हैं। वे परमात्मा जगत को प्रत्यक्ष देखते हैं। कोई भी वस्तु उनके लिए परोक्ष नहीं होती। इसी कारण इनमें जीव-अजीव, पुण्य-पाप, बंध, मोक्ष आदि सभी तत्त्वों का यथातथ्य निरूपण है।

राजा का विश्वास और भी दृढ़ हो गया। उसने कुमार से कहा-

कुमार! मुझे लगता है, यही धर्म सच्चा और श्रेष्ठ है। कुवलयचन्द्र ने विनयपूर्वक कहा—

हाँ पिताजी! आपका विचार सत्य है। मुझे भी इसका प्रत्यक्ष अनुभव है।

तुम्हें! कब प्रत्यक्ष अनुभव हुआ? राजा ने चकित होकर पूछा।

कुवलयचन्द्र ने बताया—

जब जलधिकलोल अश्व मेरा हरण करके ले गया था तो जंगल में मुझे अपने पूर्व-जन्म के साथी मुनिश्री सागरचन्द्र, सिंह और पद्मकेसर देव मिले। इनके सम्पर्क से मुझे अपने पूर्व-जन्म की स्मृति हो आई। मैंने भी पहले इसी धर्म में प्रव्रजित होकर स्वर्ग सुख भोगे और वहाँ से अपना आयुष्य पूर्ण करके आपका पुत्र बना हूँ। इस प्रकार हे तात! मुझे इस धर्म का प्रत्यक्ष अनुभव है।

राजा दृढ़वर्म को पूर्ण विश्वास हो गया। उसने साधुजी से पूछा-

मुनिवर! आप कहाँ बिराजे है?

उद्यान में।

अकेले ही अथवा अन्य साथी मुनि भी हैं?

पूरा संघ है। गुरुदेव भी हैं और अन्य साथी मुनि भी।

मुनिश्री से संघ आगमन की जानकारी प्राप्त करते ही राजा उनके साथ ही उद्यान में पहुँचा। कुवलयचन्द्र भी साथ था। राजा ने आचार्यश्री से प्रार्थना की—

गुरुदेव! मुझे प्रव्रजित कर लीजिए।

यदि तुम्हारी जिन शासन पर अविचल श्रद्धा है तो धर्मकार्य में विलम्ब मत करो।

राजा दृढ़वर्म ने नगर में आकर कुमार कुवलयचन्द्र को राज्यभार दिया और संयम की तैयारी करने लगा। कुमार ने पिता का दीक्षा महोत्सव धूमधान से मनाने का निश्चय किया। राजा ने दीक्षा से पहले राजकोष से दीनों और याचकों को प्रभूत दान दिया।

राजा कुछ समय पश्चात् ही गुरुचरणों में प्रव्रजित होकर श्रमणाचार का पालन करने लगा। आचार्यश्री संघ सहित अन्यत्र विहार कर गए।

कुमार कुवलयचन्द्र अब राजा बन गया। वह न्याय-नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करने लगा। अनेक राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस प्रकार सुख-भोगों में सात लाख वर्ष व्यतीत हो गए।

पद्यकेसर देव का आयुष्य समाप्त होने को आया। उसकी कांति क्षीण हो गई, प्रभाव भी कम हो गया। अन्त समय समीप जान अयोध्या आया। कुवलयचन्द्र के शयन-कक्ष में जाकर प्रगट हुआ। चौंक कर राजा कुवलचन्द्र ने पूछा–

हे देव! आप कौन हैं?

भूल गये कुवलयचन्द्र मुझे! मैं वही पद्मकेसर देव हूँ तुम्हारे पूर्व जन्म का साथी।

क्या आज्ञा है?

देव ने बताया–

मैं अमुक दिन और तिथि को तुम्हारे पुत्र के रूप में उत्पन्न हूँगा। तुम मेरे नामांकित दिव्य, कंगन, हार, आभूषण आदि अपने पास रखो। जब मैं परिपक्व हो जाऊँ तो मुझे पहना देना। इन्हें देखते ही मुझे जातिस्मरण ज्ञान हो जायेगा और मैं आत्मोन्नति के मार्ग पर लग जाऊँगा।

राजा ने देव की इच्छा स्वीकार की। देव अन्तर्धान हो गया। राजा ने दिव्य वस्त्राभूषण सहेज कर रख लिये।

स्वर्गलोक से च्यवकर पद्मकेसर देव कुवलयमाला की कुक्षि में अवतरित हुआ। कुवलयमाला यत्नपूर्वक गर्भ की रक्षा करने लगी। गर्भकाल पूर्ण होने पर कुवलयमाला ने एक पुत्र को जन्म दिया। राजा ने धूमधाम से पुत्र जन्मोत्सव मनाया और उसका नाम पृथ्वीसार रखा।

पृथ्वीसार पाँच धायों के लालन-पालन में बढ़ने लगा। जब उसकी बुद्धि परिपक्व हो गई तो कुवलयचन्द्र ने अपना कर्तव्य निभाया। उसे वे दिव्य वस्त्राभूषण पहना दिये।

दिव्य वस्त्राभूषणों को पहनते ही कुमार पृथ्वीसार के मन मस्तिष्क में चिन्तन चलने लगा—ये तो पहले भी कहीं देखे हैं? कहाँ.......कब........ चिन्तन गहरा हुआ और उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया।

कुमार अचेत हो गया। शीतोपचार से सचेत हुआ तो उसके हृदय में निर्वेद जागा। वह गम्भीर हो गया। उसे मनुष्य योनि और उसके सुख-भोगों से अरुचि हो गई। उसे गम्भीर देख मित्रों ने पूछा-

कुमार! स्वस्थ होते हुए भी तुम अचेत क्यों हो गये थे?

कुछ नहीं, चक्कर-सा आ गया था। कहकर कुमार ने बात टाल दी। किन्तु वह उस दिन से विरक्त-सा रहने लगा।

पुत्र की विरक्ति मिटाने के लिए राजा कुवलयचन्द्र ने उसे युवराज पद पर अभिषिक्त कर दिया। फिर भी पुत्र की चिन्तनशील प्रवृत्ति में कोई अन्तर नहीं आया। कुवलयचन्द्र को अपने आत्म-कल्याण की भी चिन्ता थी। उसने पुत्र से कहा—

वत्स! अब तुम राज्य-भार सँभालो।

विनयपूर्वक उत्तर दिया कुमार पृथ्वीसार ने—

पिताजी! राज्य तो आप ही सँभालिये। मैं तो दीक्षा लूँगा।

पुत्र का उत्तर सुनते ही पिता चिन्तित हो गये। समझाया—

अभी तुम बालक हो। कुछ दिन राज्य सुख भोगकर दीक्षा ले लेना। यह हमारे वंश की मर्यादा नहीं कि पिता से पहले पुत्र प्रव्रजित हो।

पुत्र ने कुछ उत्तर नहीं दिया, किन्तु उसके निर्वेद में भी कोई अन्तर न आया। वह गुरु आगमन की प्रतीक्षा करने लगा।

पिता ने पुत्र के मौन को उसकी स्वीकृति समझा और उस पर अधिकाधिक शासन भार डालने लगा। पुत्र अपना कर्तव्य समझ पिता की आज्ञा का पालन करता। धीरे-धीरे शासन भार पृथ्वीसार पर आ गया और कुवलयचन्द्र नाममात्र का राजा रह गया।

शासन-भार ज्यों-ज्यों कम हुआ त्यों-त्यों कुवलयचन्द्र धार्मिक क्रियाओं में अधिकाधिक समय देने लगा। रानी कुवलयमाला भी पति अनुगामिनी थी। दोनों पति-पत्नि धर्म-कार्यों में लगे रहते।

एक दिन दोपहर के समय राजा कुवलयचन्द्र अपने गवाक्ष में बैठा था। राजमार्ग पर उसे दो मुनि गोचरी हेतु आते दिखाई दिये। वह नीचे उतरा और मुनियों के चरणों में शीश झुकाकर बोला—

दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धारी मुनियों को मेरा वन्दन-हो।

मुनि युगल ने मांगलिक शब्द कहे। राजा ने उनकी सुख-साता पूछी तो उन्होंने कहा—

गुरु महाराज की कृपा से सब कुशल है।

आपके गुरु कौन हैं? प्रश्न उद्‌बुद्ध हुआ तो उत्तर मिला— आचार्य दर्पफलिह।

दर्पफलिह राजा कुवलयचन्द्र के मस्तिष्क में भीलपल्ली की घटना घूम गई। उत्सुकता जागी। पुनः पूछा—

रत्नमुकुट ऋषि के पुत्र, अथवा दूसरे कोई?

वहीं हैं।

(क्रमशः)

संकलन—

मानव जन्म की सार्थकता-गुणवत्ता पूर्ण जीने में

सृष्टि में जितने भी प्राणी हैं, सभी प्राणी अपना-अपना जीवन अपने-अपने ढंग से जीते हैं। जब-जब प्राणी अपनी-अपनी रुचि के अनुसार अपने जीवन को जीता है, तब-तब उसके उन्नति का द्वार नहीं खुलता, इसलिए तो कहा है कि सृष्टि के समस्त प्राणियों में से मानव एक प्रज्ञावान प्राणी है, एक समझदार प्राणी है। जीवन में उन्नति का द्वार खोलने के लिए रुचि के साथ गुणवत्ता युक्त जीवन जीना चाहिए, पर जब मानव गुणवत्ता रिक्त रुचिपूर्ण जीवन जीता है, तब परेशानियों का सबब बनता चला जाता है, क्योंकि प्रायः मनुष्य की रुचि पंचेन्द्रियों के विषय भोगों में नजर आती है, इसलिए उसके पास सब कुछ होने के बावजूद भी आत्मिक सुख शान्ति का वरण नहीं कर पाता और दुख अशान्ति का निवारण भी नहीं हो पाता, इसलिए तो हमारी भारतीय संस्कृति में सैद्धान्तिक, अध्यात्मिक प्रेरणा स्रोत के रूप में अपने मुख्य द्वार पर शुभ लाभ लिखने की परम्परा है, इसकी वजह यही तो है कि हमारे परिणाम शुभ रखें और शुभ परिणामों से जीवन का भला होता है और जहाँ भला होता है, वहाँ पर लाभ ही लाभ होता है। इसलिए प्रत्येक मानव को इन दो प्रेरणा पुत्र्ज शब्दों को हमेशा स्मरण में करना चाहिए और शुभ परिणाम से भला करके लाभ लेने की प्रक्रिया निरन्तर जारी रखनी चाहिए इसी का नाम है गुणवत्ता से परिपूर्ण जीवन जीना और जीवन का मंगल करना है।

—मुनिश्री प्रकर्ष सागरजी

संकलन—

सुख शान्ति का स्रोत-ज्ञान की सदुपयोगिता

सृष्टि के समस्त प्राणी सुख शान्ति चाहते हैं, कोई भी दुख व अशान्ति नहीं चाहता। पर प्रकृति का नियम है, कोई चीज चाहने मात्र से प्राप्त नहीं होती। इच्छित वस्तु की प्राप्ति हेतु उस दिशा में प्रयास करने की आवश्यकता होती है जिस दिशा में सफलता हासिल हो सके।

सृष्टि का नियम है प्रत्येक कार्य करने का अपना एक सिद्धान्त होता है, जिस कार्य करने का जो सिद्धान्त होता है, वहीं उस कार्य की सफलता का सूत्र है। जैसे मानव उदर की पूर्ति के लिए रोटी बनाता है, तब जाकर के रोटी के कार्य में सफलता हासिल होती है, ठीक इसी प्रकार सुख शान्ति प्राप्ति हेतु ज्ञान के सदुपयोग की कला आनी चाहिए, वैसे तो सृष्टि के समस्त प्राणियों के पास ज्ञान है, पर उसका सदुपयोग न कर पाने से संसारी प्राणी दुखी है।

सृष्टि के समस्त प्राणियों में से मानव एक विवेकशील प्राणी है, अगर वह अपने विवेक का प्रयोग सुख-शान्ति की प्राप्ति हेतु करे तो वह अपने जीवन में बहुत कुछ प्राप्त कर सकता है। क्योंकि कोई मनुष्य जन्म पाने से ही मनुष्य नहीं कहलाता। मनुष्यत्त्व के गुणों से युक्त होने वाला ही मनुष्य कहलाने का अधिकारी है और मनुष्यत्त्व का सबसे बड़ा गुण है अपने हित-अहित का ज्ञान। इसीलिए तो **ज्ञानम् ही अमृतम्** कहा गया है, जो हमेशा के लिए सांसारिक द्वंद फंदों से, दुख अशान्ति से, कलह और क्लेश से, हमेशा के लिए छुड़ा दे उसी का नाम अमृत है, ऐसा अमृत सृष्टि में ज्ञान के अलावा दूसरा नहीं हो सकता, इसीलिए ज्ञान की सदुपयोगिता आत्मिक सुख व शान्ति का स्रोत है, इसीलिए तो कहा गया है कि मानव जन्म एक स्वर्णिम अवसर है, इसे पाकर व्यर्थ नहीं गवाना चाहिए, जितना हो सके जीवन में ज्ञान का सदुपयोग अवश्य करना चाहिए। यही छोटा सा प्रयास इन्सान को भगवान बनाने में कारण है।

—मुनिश्री प्रकर्ष सागरजी

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1. Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:
   - Vol - 1 (satakas 1-2) Price : Rs. 150.00
   - Vol - 2 (satakas 3-6) 150.00
   - Vol - 3 (satakas 7-8) 150.00
   - Vol - 4 (satakas 9-11) ISBN : 978-81-922334-0-6 150.00
2. James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates Price : Rs. 100.00 (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)
3. P. C. Samsukha - Essence of Jainism Price : Rs. 15.00 ISBN : 978-81-922334-4-4
4. Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, Price : Rs. 50.00 ISBN : 978-81-922334-7-5
5. Verses from Cidananda Translated by Ganesh Lalwani Price : Rs. 15.00
6. Ganesh Lalwani - Jainthology Price : Rs. 100.00 ISBN : 978-81-922334-2-0
7. Lalwani and S. R. Banerjee- Weber's Sacred Literature of the Jains Price : Rs. 100.00 ISBN : 978-81-922334-3-7
8. Prof. S. R. Banerjee Jainism in Different States of India Price : Rs. 100.00 ISBN : 978-81-922334-5-1
9. Prof. S. R. Banerjee Introducing Jainism ISBN : 978-81-922334-6-8 Price : Rs. 30.00
10. Smt. Lata Bothra- The Harmony Within Price : Rs. 100.00
11. Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira Price : Rs. 100.00
12. Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity Price : Rs. 100.00

Hindi :

1. Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) ISBN : 978-81-922334-1-3 Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 40.00
2. Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 20.00
3. Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 30.00
4. Ganesh Lalwani - Chandan-Murti Translated by Shrimati Rajkumari Begani Price : Rs. 50.00
5. Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira Price : Rs. 60.00

6.	Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat,	Price : Rs.	45.00
7.	Ganesh Lalwani -- Panchdasi.	Price : Rs.	100.00
8.	Rajkumari Begani-Yado ke Aine me.	Price : Rs.	30.00
9.	Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra	Price : Rs.	15.00
10.	Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm	Price : Rs.	24.00
11.	Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika	Price : Rs.	20.00
12.	Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad ISBN : 978-81-922334-8-2	Price : Rs.	250.00
13.	Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra	Price : Rs.	50.00
14.	Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan	Price : Rs.	50.00
15.	Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal ISBN : 978-81-922334-9-9	Price : Rs.	50.00
16.	Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh	Price : Rs.	

Bengali :

1.	Ganesh Lalwani-Atimukta,	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita	Price : Rs.	20.00
3.	Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma.	Price : Rs.	15.00
4.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma	Price : Rs.	20.00
5.	Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra	Price : Rs.	25.00
6.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita	Price : Rs.	20.00
7.	Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti	Price : Rs.	20.00

Some Other Publications :

1.	Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir	Price : Rs.	15.00
2.	Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan	Price : Rs.	10.00
3.	Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma	Price : Rs.	100.00
4.	Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali)	Price : Rs.	
5.	Shri Suyesh Munjji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali)	Price : Rs.	50.00
6.	K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira	Price : Rs.	25.00

इसके अलावा जैन धर्म से सम्बन्धित अन्य तीन पत्रिकाएँ :

अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका	वार्षिक	500.00
ISSN 0021 - 4043	(आजीवन)	5000.00
हिन्दी मासिक पत्रिका	वार्षिक	500.00
ISSN 2277 - 7865	(आजीवन)	5000.00
बंगला मासिक पत्रिका	वार्षिक	200.00
ISSN : 0975 - 8550	(आजीवन)	2000.00

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

Creativity is a Modern Religion

Nahar

Architects, Interiors, Consultants

5B, Indian Mirror Street, Kolkata-700 013
Phone : 2227-5240/45, Fax : 22276356
Email Id : info@nahardecor.com

Vol XXXVII No.04
25th July 2013

TITTHAYARA

Postal Reg. No. KOL.RMS / 70/2013-15
R.N.I. 30181/77